International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 08-02-2025, Accepted: 09-03-2025, Published: 24-03-2025
Volume 11, Issue 1, 2025, Page No. 83-86

प्रवासी साहित्य में भारतीय बोध (मॉरीशस का प्रवासी साहित्य)

ज्योति झा
शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
19वीं शताब्दी में औपनिवेशिक शासन के दौरान बहुत से भारतीय किसान और मजदूरों को मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद और टोबैगो आदि देशों में ले जाया गया। इसके लिए इन्हें बहुत से प्रलोभन दिए गए, इन्हें यह बताया गया कि यहां मिट्टी के नीचे से सोना मिलता है। गिरमिट या एग्रीमेंट प्रथा के अंतर्गत इनके सामने बहुत सी लुभावने शर्तें रखी गई। इन्हीं शर्तों और यहां की उपनिवेश कालीन आर्थिक विसंगतियों के कारण, उत्तर भारत से बहुत से लोग मॉरीशस गए। जब वे वहां पहुंचे तो स्थिति इसके ठीक विपरीत थी। इन विपरीत परिस्थिति में इनका संबल भारतीय संस्कृति, धर्म, भारतीय मूल्य बोध बना। जो इनका आत्म संबल तो बना ही साथ ही, इन्हें एक सूत्र में पिरोये रखा। इसी की अभिव्यक्ति इनके द्वारा रचित साहित्य में हुई है। जिसे हम प्रवासी साहित्य के अंतर्गत पढ़ते और जानते है।
इन्होंने अपने साहित्य में भारत को सदैव जन्मभूमि के रूप में रेखांकित किया है। ये भारतीय संस्कृति की जड़ों को सदैव अपने भीतर सिंचित करते रहे हैं। इसी को इन्होंने अपने साहित्य कहानियों,कविताओं और उपन्यासों में व्यक्त किया है। इसमें भारतीय समाज में मनाये जाने वाले त्योहार, पूजा पद्धतियों, रीति रिवाज, पारिवारिक मूल्यों को व्यक्त किया गया है। दीपावली, होली, रामायण पाठ, शिवरात्रि जैसे पर्वों का वर्णन उल्लास के साथ किया गया है। इसके अतिरिक्त इनकी रचनाओं में मातृभूमि से बिछड़ने की पीड़ा, यहां की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परंपराओं के प्रति मोह भी इनके साहित्य में देखने को मिलता है। ये प्रवासी मजदूर मॉरीशस गए तो, लेकिन सदैव इन्होंने भारत को अपने हृदय में संजो कर रखा। यह भारत बोध ही प्रवासी समुदाय को कभी टूट कर बिखरने नहीं दिया। इतना ही नहीं यह बोध ही इनका संबल बना। इन्हीं के कारण आज भारतीय समाज और संस्कृति का प्रसार मॉरीशस में है। आज आधुनिक मॉरीशस के निर्माण में भारतवंशियों का महत्वपूर्ण योगदान है।

मूल शब्दः प्रवासी साहित्य, गिरमिटिया मजदूर, भारतीय संस्कृति, शोषण, संघर्ष, भारतीयता, भारत बोध।

मनुष्य के जीवन में प्रवास का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। समय समय पर व्यक्ति या समूह धार्मिक, सामाजिक, व्यापार वाणिज्य और प्राकृतिक वजहों से भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवास करता रहा है। मनुष्य अपने जरूरतों के अनुरूप समय समय पर अपने स्थान में परिवर्तन करता रहा है और वह अपने निर्धारित कर्तव्यों की पूर्ति कर अपने देश, अपने स्थान में पुनः लौट जाता है। प्रवास की एक दूसरी स्थिति भी है इसमें किन्हीं कारणों से व्यक्ति अपने देश काल से सुदूर जाकर पुनः वापस नहीं आ पाता है। इसके पीछे कभी – कभी विवशता होती है और कभी – कभी स्वेक्षा से व्यक्ति अपने देश में नहीं आना चाहता है। वह विभिन्न सुविधाओं और प्रलोभनों के चलते दूसरे देश में प्रवास कर जाता है। अतः ऐसे व्यक्ति या समूह को प्रवासी कहते हैं।
सरल शब्दों में कहा जाए तो ऐसे प्रवासी लोगों के द्वारा लिखें साहित्य को प्रवासी साहित्य कहा जा सकता है। विदेशों में बैठकर भारतीयों द्वारा जो साहित्य लिखा जा रहा है, वह सब प्रवासी साहित्य के अंतर्गत लिया जा सकता है। यह समझ प्रवासी साहित्य की बहुत ही सतही समझ होगी। प्रवासी साहित्य इतना सहज एवं सरल नहीं है। उषाराजे सक्सेना ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "किसी अन्य देश में रहने भर से ही कोई प्रवासी लेखक नहीं हो जाता। प्रवासी एक मनोविज्ञान है, एक अंतर्दृष्टि है, जिसे स्वतः फार्म्युलेट होने में बरसों बरस लगते हैं। एक तरह से प्रवासी वे कलमें है जो पेड़ से कटी हुई टहनियाँ होने के बावजूद, बरसों – बरस किसी और मिट्टी – खाद – पानी में अपनी जड़ें रोपती हुई, अपना बहुत कुछ खोने और बहुत कुछ नया उस नई भूमि से लेने पाने के साथ, अपने अंदर की गहराइयों में नई ऊर्जा सृजित करती हुई नई चेतना की कोपलें विकसित करती है"[1]। इस कथन से स्पष्ट है कि प्रवासी साहित्य में बहुत ही गहरी अनुभूति कि अभिव्यक्ति है। जिसके निर्माण में कई प्रकार के अनुभूतियों और अनुभवों का योगदान है। यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि सभी प्रवासियों की स्थितियां और अनुभूतियाँ एक सी नहीं है। यह प्रवास के कारणों के आधार पर भिन्न –भिन्न है।
आज के प्रवासी साहित्य का फलक बहुत विस्तृत है। इसमें औपनिवेशिक भारत के उन लोगों द्वारा लिखे गये साहित्य को प्रमुखता से स्थान दिया गया है। जिन्हें अंग्रेजों ने गिरमिटिया मजदूरों के रूप में मॉरीशस, फिजी, त्रिनिडाड, सूरीनाम आदि देशों में ले गए थे। यहाँ से इन लोगों को पत्थरों के नीचे से सोना निकालने के प्रलोभन देख कर ले गए थे। वहाँ पहुंचने के बाद इन्हें पता चला कि यह सब एक छलावा है। इन्हें असीम यातनाओं एवं संघर्षों को सहना पड़ा। इसी की अभिव्यक्ति इन के द्वारा लिखे साहित्य में देखने को मिलती है। ये पहले चरण के प्रवासी हैं। दूसरे चरण की शुरुआत बींसवीं शताब्दी के आरंभिक दशक में देखने को मिलता है। जब भारतीय विकसित देशों जैसे ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, एवं न्यूजीलैंड की ओर प्रवास किये। "इस चरण में प्रवास करने वाले भारतीय शहरी मध्य वर्ग से थे और अच्छे पढ़े लिखे पेशेवर थे। तीसरे चरण का प्रवास 1970 ईस्वी के आसपास प्रारंभ हुआ, इस चरण में मुख्यतः सऊदी अरब, कुवैत, यूनाइटेड अरब अमीरात, बहरीन, कतर तथा लीबिया आदि देशों में हुआ। इस चरण में विकसित देशों की ओर प्रवास हुआ। ये लोग भारत के उच्च शैक्षणिक संस्थान आई आई टी और आई आई एम से पढ़े लिखे थे। इन सभी प्रवासियों द्वारा लिखा गया साहित्य हमारे बीच मौजूद है"[2]। इसमें महत्वपूर्ण रूप से प्रवासी लेखकों ने भारत के प्रति, यहाँ की संस्कृति के प्रति, अपने देश एवं परिवार के प्रति, अपने प्रेम को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। इससे निश्चित रूप से हिंदी साहित्य और इसके माध्यम से भारतीय साहित्य समृद्ध हुआ है।
'प्रवासी भारतीय' चाहे जिन कारणों से विभिन्न देशों में गए। लेकिन उन्होंने अपने भीतर भारतीय संस्कृति और 'भारत बोध' को

अपने मन के भीतर समाहित रखा। इसी की अभिव्यक्ति इनके साहित्य में देखने को मिलती है। चाहे वह अपने लोगों को आपस में जोड़ने रखने के लिए हो, या फिर संघर्ष के लिए, या विदेशी धरती पर अपने अस्तित्व रक्षा के लिये हो, इन प्रवासी भारतीयों ने अपनी भारतीयता को भाषा एवं संस्कृति के माध्यम से अपने भीतर जीवित रखा। विदेश में विभिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों में यही इनका आत्म संबल बना। इसी तरह से भारतीय संस्कृति, धर्म, नैतिकता, आचार –विचार और संस्कारों का विदेशी भूमि में प्रचार प्रसार हुआ। इन प्रवासी भारतीयों ने पूरे विश्व को यह बताया है कि अपने विचारों और अपने धर्म संस्कृति का प्रचार –प्रसार मात्र तलवार के दम पर ही और युद्ध के आधार पर ही नहीं किया जाता। बल्कि शांतिपूर्ण और विपरीत परिस्थितियों में भी अपने को, अपने समाज को, अपने धर्म को, अपने देश काल के महत्वपूर्ण विचारों को प्रचारित – प्रसारित किया जा सकता है।

आज संपूर्ण विश्व भारतीय संस्कृति और यहाँ की ज्ञान परंपरा का लोहा मानता है। वह मात्र इसलिए नहीं कि यह भारत में ही सशक्त और समृद्ध हैं। वह इसलिए भी कि भारत से जो भी लोग विभिन्न कारणों और भिन्न –भिन्न समय में भिन्न भिन्न देशों में गए। वे वहां रहे तो जरूर, लेकिन अपनी अस्मिता को मिटा करके नहीं। भारतीय अस्मिता, उनकी पहचान हमेशा बनी रही। भारतीय लोग जहाँ कहीं भी गए उन्होंने अपने भारतीय होने के बोध को समाप्त नहीं होने दिया। बल्कि इस पहचान के साथ मजबूती से जुड़े रहे और विभिन्न तरीकों से अपनी आने वाली पीढ़ियों को भी किसी न किसी तरह से अवगत कराते रहे। यही कारण है कि "भारतीय लोग जहाँ भी गए है और नए देशों में बसे हैं, वहाँ अपनी धार्मिक सांस्कृतिक व्यवस्थाओं को साथ ले गए हैं। उन्होंने ब्रिटेन में भी अपनी मंदिर, मस्जिद, गुरूद्वारे बनवाए और एशियाई वातावरण का निर्माण किया। इन्हीं धार्मिक स्थलों पर इन लोगों ने अपनी शिक्षा, परम्पराएं स्थापित की और अपनी भाषाओं को अपनी बच्चों को सिखाया। चूँकि ये सांस्कृतिक केंद्र लोगों के मिलन क्षेत्र होते थे, अतः यहाँ भारतीय साहित्य संगीत, नाटक और अन्य प्रकार के कार्यक्रम प्रस्तुत होते ही रहते थे"3। इस तरह के आयोजनों के द्वारा प्रवासी समुदाय अपने भीतर भारतीयता को बचाए और संजोए हुए है। जो भारतीय संस्कृति और समाज को समृद्धि प्रदान करता है।

भारतीय संस्कृति और समाज से लगाव ही इन्हें रचनात्मक अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करता है। इनके साहित्य में "भाषा और संस्कृति से अटूट लगाव। कुछ कहने की उत्कट इच्छा। नए समाज और नए जीवन मूल्यों के अंतर्विरोधों के बीच कुछ कहने की बेचौनी है। जो वहाँ के समाज के किसी पक्ष को देख प्रसन्नता से आश्चर्यचकित हो जाते हैं और कही अपने को मिसफिट पाते हैं। जिन्हें अपनी अगली पीढ़ी हाथ से जाती हुई लगती है जो अभी भी अपनी जड़ों से जुड़े हुए हैं। जिन्हें गांव, कस्बे, सहर की याद आती है। जो रिश्ते – नातों को महत्त्व देते हैं"4 जिन्हें अपने समाज और संस्कृति से लगाव है, जिन्हें देश दृ काल और परिस्थिति से लगाव है। जिन्होंने पथरीली और बंजर भूमि को अपने खून पसीने से सींचकर उसे उपजाऊ बनाकर, उस देश कि समृद्धि में अपना योगदान दिया है। यही सब अनुभव साहित्य के रूप में व्यक्त हुआ है। इसकी अभिव्यक्ति उन्होंने अपनी भाषा हिंदी में किया है। वे यह जानते हैं कि जिस देश में वे रह रहे है, जिस भाषा में अभिव्यक्ति कर रहे है, उसे वहाँ पढ़ने समझने वालों की संख्या बहुत ही कम है। उनके पाठक उनके समाज के अलावा और कोई नहीं है। लेकिन वे जानते हैं कि उनके पाठक उनके अपने देश भारत में बहुत है। इसलिए वे अपनी अभिव्यक्ति अपनी भाषा हिंदी में करते है जो उन्हें विशाल भारतीय समाज से जोड़ता है।

इस तरह से प्रवासी साहित्य विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों को अपने भीतर समाहित किए हुए है। इसका फलक बहुत विस्तृत है। लेकिन इस सच्चाई को भी स्वीकार करना होगा कि " यूरोपियन, अमेरिका आदि पूँजीवादी देशों में जाने वाले तथा वहाँ हिंदी में रचना करने वाले लेखकों की तुलना गिरमिटिया मजदूर बनकर जाने वाले भारतीयों तथा उनकी संतानों में से हिंदी लेखक बनने वालों से, नहीं की जा सकती। क्योंकि इन दोनों वर्गों की परिस्थितियां भिन्न भिन्न थी। शिक्षा का रूप भिन्न था, तथा भाषा ज्ञान एवं विश्व ज्ञान के स्तर में बड़ा भारी अंतर था"[6]। गिरमिटिया मजदूरों की चुनौतियां और संघर्ष, प्रवासी साहित्य में उन्हें अप्रतिम बना देता है। उनके सामने यह सुविधा भी नहीं थी कि यदि उन्हें दूसरे देश का परिवेश पसंद नहीं आया तो, वे अपने देश अपनों के बीच लौट जाए। "मॉरिशस, फ़िजी, सूरीनाम, त्रिनीडाड आदि देशों में जाने वाले गिरमिटिया भारतीय मज़दूरों ने असीम यातनाएं, अपमान तथा संघर्ष झेला था और उनके लिए वापस अपने देश लौटने की संभावनाएँ भी अत्यल्प थी"7। यह कहे कि नहीं के बराबर थी। एक बार जो गया उसे उसके सामने लगभग दो ही विकल्प होते थे। एक तो वह अत्याचार सह कर अंग्रेजों की गुलामी करता रहे या फिर आत्म हत्या ही उसकी मुक्ति का साधन हो सकता है।

गिरमिटिया मजदूरों के रूप में गए प्रवासी लेखकों के द्वारा या उनके परिवारी जनों के द्वारा लिखा गया साहित्य अत्यंत ही व्यापक है। यहाँ उन सभी का विश्लेषण प्रस्तुत करना संभव नहीं है। यदि संवेदना के धरातल पर देखा जाय तो, इनके द्वारा लिखे गए साहित्य में बहुत कुछ समानता है। इस लिए यहाँ मॉरीशस के गिरमिटिया मजदूरों पर लिखे गये साहित्य में, 'भारतीय बोध' की दृष्टि से अध्ययन किया गया है। जहाँ विपरीत परिस्थितियों में भी यही इनका आत्म संबल बनता है। 19 वीं शताब्दी में मॉरिशस में छल कपट से हजारों की संख्या में "भारतीय मजदूरों को गिरमिटिया प्रथा अर्थात शर्त बंदी कानून के अंतर्गत भेजा गया था। ये सभी भारतीय मजदूर लगभग एक ही जैसी परिस्थितियों में कलकत्ता तथा मद्रास बन्दरगाहों से जहाज पर जानवरों की तरह लादकर, इन देशों में भेज दिए गए। कुछ तो रास्ते में ही मर गए और शेष बुरे हाल में पहुंचे और तुरंत उन्हें गोरे मालिकों को सौंप दिया गया"[8]। इन गोरे मालिकों ने इन्हें बंजर और पथरीली जंगली भूमि को समतल बनाने में लगा दिया, जिससे गन्ने की खेती करवाई जा सके। भारत से तो इन्हें यह कहकर ले जाया गया था कि वहां सोने के भंडार है, पत्थरों के नीचे से सोना निकलता है। वहां पहुँचकर इन लोगों को पता चला कि यह सब झूठ है, धोखा है।

यहाँ इनकी स्थिति जानवरों से भी बत्तर थी। अंग्रेज इनपर तरह तरह से अत्याचार करते, उन्हें इन मजदूरों के काम से सिर्फ मतलब था, यदि इनमें से कोई बीमार या किसी रोग से पीड़ित हो जाता तो उसे मरने के लिए छोड़ दिया जाता। वे यहाँ से भाग भी नहीं सकते थे, क्योंकि यह देश चरों तरफ से समुद्र से घिरा हुआ था। इस तरह की हृदय को व्यथित कर देने वाली अनगिनत घटनाएं साहित्य रुपी दस्तावेज में दर्ज है। इसीलिए प्रवासी साहित्य में इनका एक विशिष्ट स्थान है। इतनी विपरीत परिस्थितियों में भी इन्होनें अपने अस्तित्व और अस्मिता को बचाए रक्खा। इसे बचाने में इनका आत्म सम्बल बना 'भारत बोध' जिसकी निर्मिती भारतीय समाज, संस्कृति और चेतना से हुई थी। अपनी इसी चेतना को जागृत रखने के लिए इन प्रवासी मजदूरों ने अपने साथ 'रामचरितमानस', 'हनुमान चालीसा', 'आल्हा', 'सत्यनारायण कथा', 'महाभारत', 'श्रीमद्भागवत् कथा'आदि ग्रंथों को अपने साथ ले गए थे। जिससे विपरीत परिस्थितियों में भी इनका आत्म सम्बल बना रहा।

ये मात्र किसी समुदाय विशेष के धार्मिक, पौराणिक ग्रन्थ नहीं है, ये विशाल भारतीय समाज के सांस्कृतिक ग्रन्थ है। बल्कि ये भारतीय चेतना का प्रतिनिधित्व करते है। विपरीत परिस्थितियों में कष्टों को सहने का साहस प्रदान करते है। ये ग्रन्थ अनायास ही

इनके प्रिय ग्रन्थ नहीं है,ये ग्रन्थ इनमें साहस का संचार करने वाले है। क्योंकि इन प्रवासी मजदूरों के भीतर अपने समाज देश और परिवार से कट जाने की अपने देश से विस्थापित होने की पीड़ा है। "भारत के महानतम आदि ग्रंथ 'रामायण और महाभारत' को ही लें तो आप पाएंगे कि दोनों में ही 'विस्थापन' का तत्व मौजूद हैं। रामायण की मार्मिकता का नियामक तत्व उसका वनवास है। पांडवों का निर्वासन उन्हें निरंतर दृढ़ और ऊर्जावान बनाता है"[9]। ये ग्रन्थ इन्हें हमेशा आत्म संबल प्रदान करते है, परिस्थितियों से लड़ने का संबल प्रदान करते है। इनके द्वारा रचित साहित्य में राम, कृष्ण, अर्जुन, विष्णु,शिव आदि पौराणिक देवताओं का उल्लेख बार–बार आता है। इसके मूल में इन्हीं ग्रंथों का प्रभाव है।

अपने इन्हीं भाओ को व्यक्त करते हुए भानुमति अपनी कविता में कहती है कि–

"मुझे भाई बहनों का प्यार चाहिए
मुझे शुद्ध भाषा में भगवद्गीता के श्लोक सुनना है
मुझे श्रद्धा पूर्वक गाए गए भजनों को सुनना है
मुझे अपना बचपन लौटा दो"[10]।

यहाँ आपसी प्रेम और सौहार्द्र की कामना की गई है, साथ ही गीता और श्रद्धा के साथ गाए गये गीतों और भजनों को सुनने की आकांक्षा व्यक्त की गई है। इतना ही नहीं ये लोग अपने संस्कारों के प्रति भी निष्ठावान है। पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव में ये अपने संस्कारों को छोड़ नहीं देते, बल्कि अपने अस्मिता की रक्षा के लिए, अपनी पहचान को बनाए रखने के लिए, उसे बचाये रखने के लिए उससे घनिष्ठ रूप से जुड़े रहते है–

"युग आएँगे युग जाएंगे
हमारी तिलक लगाने की परंपरा अटल और अमर रहेगी
यह हम हिंदुओं की धरोहर है हमारा गौरव हैं"[11]।

वहाँ सभी प्रकार के रीति–रिवाजों का निर्वहन किया जाता है। शादी–विवाह भी भारतीय समाज और उन समाजों में प्रचलित परम्पराओं के अनुरूप ही संपन्न करवाया जाता है। सभी प्रकार के संस्कारों का मांगलिक अवसरों पर निर्वहन किया जाता है। इनके साहित्य में पश्चिमी सभ्यता के दिखावटी पन, खोखले पन का खंडन किया गया है। भानुमति नागदान ने अपनी कविताओं में भारतीयता, तथा पारिवारिक जीवन कि महत्ता को मुखरता से व्यक्त किया है। वे पारिवारिक प्रेम को उत्कृष्ट मानती है–

"आज हमारा परिवार सुखी है
मुझे संतोष है
हाँ मेरे पति देव ने मुझे नहीं कहा 'आई लव यू'
और मैं समझती हूँ इसकी जरूरत भी नहीं थी"[12]।

इस तरह के भाव प्रवासी साहित्य में प्रमुखता से देखने को मिलते है। यही भाव ही भारतीय बोध है, जो भूमि अलग होने पर भी चेतना के धरातल पर इन्हें भारत से जोड़े हुए है। इसी जुड़ाव को इन्होनें अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। भारतीय समाज में मनाए जाने वाले पर्व और त्योहार, यहाँ की संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग हैं द्य इसके बिना भारतीय समाज अधूरा प्रतीत होता है। यह लोकरंजन के बहुत ही महत्वपूर्ण माध्यम है। इन पर्वों एवं त्योहारों के द्वारा लोग आपस में एक दूसरे से मिलकर सामाजिक सामूहिकता को प्रदर्शित करते हैं। प्रवासी साहित्य में विभिन्न पर्वों और भारतीय समाज में मनाए जाने वाले त्यौहारों का उल्लास पूर्वक वर्णन किया गया है। इन प्रवासी भारतीयों ने विदेशी धरती पर अपनी संस्कृति को प्रमुखता दी है। ऐसा नहीं है कि इन्होनें पाश्चात्य संस्कृति के रंग में रंग कर अपनी संस्कृति से मुख मोड़ लिया। ये भारतीय समाज में मनाए जाने वाले सभी पर्वों एवं त्योहारों को बहुत ही उल्लास के साथ मनाते रहे और अपनी आने वाली पीढ़ियों को भी इससे समृद्ध करते रहे। जिसकी अभिव्यक्ति इनके साहित्य में देखने को मिलती है। हिंदी में लिखित 'गणेश' कवि कि 'होली' पर लिखित कविता अत्यंत ही महत्वपूर्ण है–

" आर्यों ने ऐसी होली मचाई।
चहुँ दिसि से सज्जन सब आये, बैठे समय बनाई।
गावत वेद अति नीको, ध्यावत यश यगरायी।।
खेलत फाग सुलभ सूचि संयम, सत पिचकारी बनाई।
प्रेम रंग – रंग भरि – भरि, भारत ज्ञान गुलाल सुहाई।।
रंगे सब सज्जन भाई"[13]।।

यहाँ होली गीत के माध्यम से भारतीय समाज में स्थित ज्ञान, वेद, संयम, सत्य, जप– तप, दान आदि गुणों का वर्णन किया गया है। यहाँ पिचकारी भी सत्य की है, जो सभी भाइयों को सत के रंग से रंग रही है। यह भारतीय संस्कृति और भारतीयता को अभिव्यक्त करने वाली सबसे सुन्दर फाग गीतों में है। इसी उल्लास के साथ दीपावली, रामनवमी, दशहरा आदि पर्वों को बहुत ही धूम धाम से मानाने का सुन्दर दृश्य इनकी कविताओं में व्यक्त हुआ है।

इनके मन में भारतीय नदियों एवं तीर्थों के प्रति अगाध श्रद्धा है। भारतीय जनमानस में गंगा स्नान का बहुत महत्व है। इन्हें भी गंगा स्नान के महत्त्व के बारे में पता है। यहाँ ये लोग आ नहीं सकते। इसलिए गंगा की कमी को दूर करने के लिए 'गंगा तालाब' बनाया गया है। जिसमें भारत से गंगा जल मंगा कर मिला दिया गया है। जिससे गंगा स्नान का पुण्य यहाँ भी प्राप्त किया जा सके। इन्होने अपने गीतों के माध्यम से यह इक्षा व्यक्त कि है कि भगवान कृष्ण लीला करने के लिए मॉरीशस में आ जाए –

"कृष्ण वंशी वाले तुम दर्शन दिखा जा
सत्य सनातन धर्म है प्यारा,
गौ चराने वाले तुम मॉरीशस में आजा"[14]।

इस तरह के बहुतेरे चित्र इनके साहित्य में भरे पड़े है। इसके मूल में इन प्रवासियों के मन में भारत और यहाँ की संस्कृति से प्रेम ही है। डॉ. अभिषेक मनु सिंघवी जी ने ठीक ही लक्षित किया है कि "प्रवासी भारतीय जो भारतवासियों की तरह ही भारतवंशी हैं, भारत के साथ गहरा जुड़ाव महसूस करते हैं। इसका कारण यह है कि उनके मन में अपने पूर्वजों की संस्कृति के प्रति एक आकर्षण और लगाव है"[15]। यह लगाव ही इनके मन पर पाश्चात्य संस्कृति के रंग को चढ़ने नहीं देता है। ये उनके बीच रहकर भी अपनी भाषा, संस्कृति और संस्कारों को बचाए हुए है। "मॉरीशस इस बात का सबसे जीता जागता प्रमाण है कि संस्कृति न तो रातों की रात जनमती है और न ही रातो – रात मिटाई जा सकती है। यह है भारतीय प्रवासी अस्मिता का सबसे बड़ा प्रतीक"[16]। इसी अस्मिता बोध के साथ ही 'भारत बोध' का निर्माण होता है। इन्हीं प्रवासी भारतीयों के द्वारा आज भारतीय संस्कृति और चेतना विश्व के विभिन्न देशों में परिलक्षित हो रही है। इन्हीं के माध्यम से आज भारतीय संस्कृति, धर्म और चेतना का प्रसार अन्य समाजों में देखने को मिल रहा है।

भाषा संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग होता है। प्रवासी भारतीयों द्वारा हिंदी भाषा में किया जा रहा साहित्यिक लेखन हिंदी भाषा को भी समृद्ध कर रहा है। इनके लेखन के माध्यम से विदेशों में हिंदी

भाषा का प्रचार – प्रसार तेजी से बढ़ रहा है। हिंदी भाषा को बोलने और समझने वालों की संख्या लगातार बढ़ रही है। इस तरह से प्रवासी साहित्य लगातार भारतीय संस्कृति और समाज को समृद्ध कर रहा है। यह समय कि मांग है कि इस पर और अधिक शोध, अध्ययन, विश्लेषण किया जाय। जिससे प्रवासी भारतीयों को भारतीय समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जा सके।

सन्दर्भ सूची

1. हिंदी प्रवासी साहित्य – सम्पादक, कमल किशोर गोयनका – पृष्ठ 67
2. प्रवासी साहित्य और भारतीय संस्कृति – प्रधान सम्पादक, डॉ. जहिदुल दीवान – पृष्ठ 2
3. हिंदी प्रवासी साहित्य – सम्पादक, कमल किशोर गोयनका – पृष्ठ 82
4. वही – पृष्ठ 87
5. हिंदी का प्रवासी साहित्य – कमल किशोर गोयनका – पृष्ठ 56
6. हिंदी प्रवासी साहित्य – कमल किशोर गोयनका – पृष्ठ 16
7. वही – पृष्ठ 16
8. वही – पृष्ठ 19
9. हिंदी प्रवासी साहित्य – सम्पादक, कमल किशोर गोयनका – लेख
10. प्रवासी साहित्य – कितना प्रवासी – सुरेश ऋतुपर्ण –पृष्ठ 57
11. मॉरीशस कि हिंदी कविताएं – चयन एवं सम्पादन –कमल किशोर गोयनका – भानुमति नागदान की कविताएँ – पृष्ठ 198
12. वही – पृष्ठ 84
13. वही – पृष्ठ 201
14. हिंदी का प्रवासी साहित्य – सम्पादक कमल किशोर गोयनका – पृष्ठ 200
15. मॉरीशस के मध्यकालीन काव्य प्रसून – सम्पादक प्रहलाद रामशरण – पृष्ठ 62
16. प्रवासी और संस्कृति कि पहचान – डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी –12
17. प्रवासी दिवस कितना प्रवासी ? – अभिमन्यु अनत – पृष्ठ 48 – प्रवासी संसार पत्रिका – अंक जनवरी – मार्च 2004